श्रीमंत शंकरदेव के नाटकों में मुखौटा कला

पुरबी कलिता

मध्यकालीन भक्त शिरोमणि महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने संपूर्ण उत्तर पूर्वांचल में भक्ति आंदोलन के नारों का प्रचार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने असम की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों के बीच लोगों को भक्ति का संदेश दिया था। पन्द्रहवीं शताब्दी के अंतिम समय की बात है। उस समय असम पिछड़ा हुआ था। धर्म के नाम पर सर्वत्र अधर्म फैला हुआ था। ऊँच-नीच के भेद-भाव से समाज ग्रस्त था। अनीति, अत्याचार से ग्रसित उस समाज में ही महापुरुष शंकरदेव हमारे बीच आए। उन्हें हम जगत गुरु के रुप में स्वीकारते हैं। महापुरुष शंकरदेव बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे-समाज सुधारक, धर्म प्रचारक, साहित्यकार, गायक, नृत्य विशारद । सिर्फ वे ही नहीं, समाज जीवन का एक भी वैसा क्षेत्र नहीं रहा, जहाँ उनकी दृष्टि नहीं गई। एक संपूर्ण मानव के रुप में आप आए, पँहु दिशाओं में विरल छाप छोड़कर चले गए।

वैचित्र्यमय भारतवर्ष में विचित्रताओं के बीच भी एकता नजर आती है। शंकरदेव को यह बात अच्छी तरह मालूम थी। भारत की तरक्की के लिए इन विचित्रताओं को कायम रखना है। ऐसा एक सहज-सरल सर्वग्राहय धर्म का उन्होंने प्रचार किया, जिसको सब लोग अपने-अपने अस्तित्व को, अपनेपन को, विचित्रता को कायम रखते हुए ग्रहण कर सके। संस्कृत में लिखित कठिन शास्त्रों के कठिन तत्वों को, दर्शनों को सरलीकृत कर एक सामान्य सहज मार्ग-एकशरण नाम धर्म का प्रचार किया। इसी सहज-सरल धर्म के सूत्र से सबको बांधकर एक सर्वभारतीय भक्ति आंदोलन के झंडे के नीचे खड़ा कर दिया।

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के समय में मानव समाज के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में जो पंगुता आयी थी तथा अंध-विश्वास एवं दुस्कृति ने जिस तरह उसे घेर लिया था उसे दूर कर एक स्वच्छ, संस्कारयुक्त जीवन देने के लिए इन्होंने जीवन भर प्रयत्न किया।

श्रीमंत शंकरदेव ने इन सबके विरोध में आवाज उठाने के लिए श्रव्य काव्य के साथ-साथ दृश्य काव्य का भी सहारा लिया। इन्होंने नाटक, गीत रचना कर अभिनय भी किया और कराया था, जिनके माध्यम से मानव मन को आसानी से आकर्षित तथा प्रभावित किया जा सकता है।

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव की नाट्य यात्रा प्रारंभ होती है पहली बार तीर्थ यात्रा से लौटने के पश्चात। तीर्थ से लौटने के बाद अपने लोगों ने उनसे भागवत भक्ति का महत्व सुना तो उनके प्रति आग्रह को देखते हुए उन्होंने 'चिहन यात्रा' नामक नाटक को अभिनीत करने का निर्णय लिया, जिसे उन्होंने चिहन के यानी पर्दों के जरिए सात दिन सात रात तक दिखाया। कहा जाता है कि इन दिनों लोग अपनी सुध-बुध खोकर इसे देख रहे थे-

"नजानिले सभासदे किवा रात्रि दिन।

देखि वैकुन्ठक येन पात भैल क्षीण ।। नारीसवे निचिनय कोनजन स्वामी।

सवे हन्ते येहेन भैलन्त मोक्षगामी ।।

बालके निचिने कोनजन माव-बाप।

समस्तरे शरीर अतंरिला पाप ।।

स्वामीये निचिने एड़ मोर भार्या बुलि।

शंकरर मायाये सबाके थैला भुलि।।"[1]

(गुरुचरित-रामचरण ठाकुर)

भाओना (नाटक) एक उच्चमान विशिष्ट संस्कृति है। जहाँ उच्चशिक्षित चिंताविद् के साथ-साथ अशिक्षित तथा जनसाधारण के मन में भगवान के प्रति भक्ति भावना जगाते हैं। श्रीमंत शंकरदेव की भाओना संस्कृति के बारे में संतावली ग्रंथ में लिखा है-

"गायन बायन सबे सभाजय करे।

सूत्र नाट्यगणेरसिकर मन हरे ।।

पंडिते बुजिबे श्लोक करिला वचन।

गीत अर्थ बुजिबेक द्विज सभ्य गन।।

ब्रजावली भाषाक बुजिबे ग्रामीलोक।

छो-मुखा देखिवेक अज्ञ मूढ़ लोक ।।

शुद्ध बा अशुद्ध तथापिटो कृष्ण नाम।

एड़ सप्तरस नाटकर अनुपम ।। "[2]

(संतावली ग्रंथ)

श्रीमंत शंकरदेव ने एक अंक के नाटक रचे थे। एक अंक के नाटक रचने का अन्यतम् कारण यही था कि इन्होंने नाटक की रचना मंचन हेतु की थी और उसके द्वारा वे विष्णु भक्ति का प्रचार करना चाहते थे। इस प्रकार श्रीमंत शंकरदेव ने अपने काव्यों, गीतों तथा नाटकों द्वारा इस भू-भाग में परिव्याप्त अनाचार तथा व्यभिचार को दूर कर एक स्वस्थ-सुंदर समाज का निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

श्रीमंत शंकरदेव ने धर्म के प्रति आकर्षित, लोगों के मन में भक्ति भावना तथा आनंद प्रदान करने के लिए नाट्य कला को जन्म दिया था। अपने नाटकों में विभिन्न पौराणिक चरित्रों के अभिनय को सजीव रुप देने के लिए उन्होंने मुखौटा-कला का भी सृजन किया था। मुखौटे मनुष्य की कल्पना एवं सृजनात्मकता के उत्कृष्ट नमूने हैं। यह अभिनेता को वह आवश्यक दूरी एवं छिपाव देते हैं, जिसके बिना किसी विशेष बात की अभिव्यक्ति असंभव होती है। गुरुचरित के अनुसार श्रीमंत शंकरदेव के पहले नाटक 'चिह्नयात्रा' में मुखौटा का व्यवहार हुआ था।-

"प्रथमर लक्ष्मी सर्वजयक करिला।

गरुड़र मुखा एरि स्त्री काच लैला।।"[3]

(गुरुचरित-रामचरण ठाकुर)

मुखौटों को बनाने के लिए प्रायः स्थानीय, अति साधारण सामग्री को माध्यम बनाया जाता है। यह सामग्री इस प्रकार है- बांस, बेंत, गोबर, मिट्टी और कपड़ा। मुखौटा बनाने के लिए सबसे पहले कच्चे बांस को 6 से. 7 दिनों के लिए पानी में भिगोकर रखा जाता है। ऐसा करने से बांस में लचीलापन आता है और साथ ही बांस के टुकड़ों को कीटों के हमले से बचाया जाता है। उसके बाद बांस को आवश्यकतानुसार विभिन्न खंडों में विभाजित किया जाता है। पतले और लचीले टुकड़ों की सहायता से मुखौटे के प्रारंभिक ढांचे को तैयार किया जाता है। यहाँ प्रत्येक जोड़ पर बेंत की सहायता से ढांचे को गठित किया जाता है। मूल कंकाल तैयार होने के बाद इस पर सूती कपड़े को गीली और चिकनी मिट्टी में भिगोकर चिपकाया जाता है। उसके बाद इसके ऊपर गोबर और मिट्टी की दूसरी परत चढ़ाई जाती है। मुखौटा सूखने के बाद मुखौटे को उसका वास्तविक रुप दिया जाता है। कलाकार मुखौटे में नाक, कान, आँख, मुँह भृकुटी, मूंछें, दांत आदि का निर्माण करता है और साथ-साथ मुखौटे का चरित्र निर्धारण करता है। चारित्रिक विशेषताओं के अनुरुप मुखौटे को विभिन्न रंगों से रंगा जाता है। पहले मुखौटों की रूपसज्जा के लिए प्राकृतिक रंगों जैसे परंपरागत जातीय हंगुल, हाइताल, नील और धूल या सफेद मिट्टी आदि का प्रयोग किया जाता है। लेकिन अब प्राकृतिक संसाधनों का कम मात्रा में उपलब्ध होने के कारण वर्तमान में अधिकांशतः कृत्रिम रंगों का उपयोग ही मुखौटों के निर्माण में किया जाता है। कलाकार ने चारित्रिक विशेषताओं के अनुरुप मुखौटे पर रंग से कलाकारी की जाती है। किसी राक्षस या दैत्य-दानव का मुखौटा होगा तो उसके क्रोधित और आवेशित भावों को कलाकार उकेरता है। इसी तरह किसी पक्षी, देव-देवी के मुखौटे को उसकी भावभंगिमाओं के अनुसार रुप दिया जाता है।

मुखौटे मुख्य रूप से तीन प्रकार के बनाये जाते हैं-1. छो मुखौटा, 2. लोटोकाइ मुखौटा, 3. मुख मुखौटा।

छो मुखौटा सर्वसाधारण से बहुत ज्यादा बड़ा होता है। रावण, कुम्भकरण, वाणराजा, नरकासुर नरसिंह आदि चरित्र के लिए इस प्रकार का मुखौटा बनाया जाता है। गुरु चरित के अनुसार, महापुरुष शंकरदेव ने अपना पहला नाटक 'चिह्नयात्रा' में छो मुखौटा का व्यवहार किया था। छो मुखौदा दो प्रकार से बनाया जाता है-1. लौकिक मुखौटा,2. अलौकिक मुखौटा।

प्रकृति में उपलब्ध कुछ प्राणियों की आकृति के अनुरुप बनाए गये मुखौटे को लौकिक मुखौटा कहते हैं।

इसके विपरीत जो हमने कभी प्रकृति में देखा ही नहीं, सिर्फ कल्पना कर सकती हूँ, उसे अलौकिक मुखौटा कहते हैं।

लोटोकाइ मुखौटा छो मुखौटा से छोटा होता है। पूतना राक्षसी, तारका, यक्ष, शंखचूड़, गरुड़, जटायु, अघासुर आदि चरित्रों में इस प्रकार के मुखौटा का व्यवहार किया जाता है। शरीर के अंगों जैसे हाथ, पांव, मुँह, आँखों को ध्यान में रखकर इनका निर्माण होता है।

मुख मुखौटा में सिर्फ चेहरे को ढकते हैं। हनुमान, बालि, सीता, मारीच, सुबाहु, कंस आदि चरित्र में इस प्रकार के मुखौटा का व्यवहार किया जाता है।

सत्र और माजुली, ये दो शब्द एक दूसरे से जोड़ा हुआ है, "Satra and Majuli are the two terms equivalent to the obverse and reverse of a coin - Indeed, Majuli is understood in terms of its Satras. Its society, culture and ever its economy are largely to be viewed in the content of its being a land of the Vaishnava monasteries called Satra."[4]

असम में माजुली, ही ऐसी जगह है, जहाँ नववैष्णव धर्म की कला संस्कृति सुरक्षित रह सकते हैं। इसलिए उस समय के धर्म गुरु तथा धर्म के प्रति आस्था रखने वाले आहोम राजा भी माजुली में सत्र स्थापना करने के लिए उत्साहित हुआ करते थे। "The geographical isola- tion has made it an ideal place for religious preachers and has made it a spot for meditation of rishi&sanyasis- This was possibility the major reason as to why did the Ahom Kings selected the site for establishment of the great Vaishnava monastries-Auniati, Dakshinpat and Garamur and many other coming later on"[5]

मुखौटा-कला के क्षेत्र में माजुली का सामागुरी सत्र विश्व प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त श्रीश्री एलेङी नरसिंह सत्र, नतुन कमलाबाड़ी सत्र, विहिमपुर सत्र में भी परंपरागत मुखौटा निर्माण का कार्य जारी है। माजुली में निर्मित इन मुखौटों की मांग विदेशों में भी है। सामागुरी सत्र सर्वाधिक पुराना सत्र है। यहाँ पर मुखौटा-कलाकारों की एक लंबी परंपरा रही है। सामागुरी सत्र के सत्राधिकार स्वर्गगामी कुशाकांत गोस्वामी एक प्रसिद्ध मुखौटा-कलाकार थे। सत्राधिकार प्रभु ने सर्वप्रथम मुखौटा-कला को विश्वस्तर पर प्रदर्शन्न् करके भारतीय संस्कृति का मान बढ़ाया था। कुशाकांत गोस्वामी के मार्गदर्शन में कई शिष्यों ने मुखौटा शिल्प की शिक्षा तथा प्रशिक्षण लिया था। कला, संस्कृति के क्षेत्र में उल्लेखनीय अवदान के लिए उनको वर्ष 2003 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया था। सामागुरी सत्र को मुखौटा-कला, कई राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है

मुखौटा-कला के क्षेत्र में माजुली का सामागुरी सत्र विश्व प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त श्रीश्री एलेङी नरसिंह सत्र, नतुन कमलाबाड़ी सत्र, विहिमपुर सत्र में भी परंपरागत मुखौटा निर्माण का कार्य जारी है। माजुली में

निर्मित इन मुखौटों की मांग विदेशों में भी है। सामागुरी सत्र सर्वाधिक पुराना सत्र है। यहाँ पर मुखौटा-कलाकारों की एक लंबी परंपरा रही है। सामागुरी सत्र के सत्राधिकार स्वर्गगामी कुशाकांत गोस्वामी इस सत्र के गुरुदेव डॉ. हेमचंद्र गोस्वामी एक प्रतिष्ठित कलाकार हैं। हेमचंद्र गोस्वामी के निर्देशन में राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मुखौटा-कला का प्रदर्शन हुआ है। असमिया कला संस्कृति के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए वर्ष 2017 में गौहाटी विश्वविद्यालय ने हेमचंद्र गोस्वामी को डॉक्ट्रेट की उपाधि से सम्मानित किया। वर्ष 2018 में हेमचंद्र गोस्वामी को संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है। पिछले कई वर्षों से इस महान कला को जीवित रखने के लिए गुरुदेव हेमचंद्र गोस्वामी इस कला का प्रशिक्षण सत्र में शिष्यों और देश-विदेश से आने वाले पर्यटकों को भी दे रहे हैं। ये मुखौटे आज पूरे भारतवर्ष की कला, संस्कृति के उच्चतम नमूने हैं, क्योंकि इस कला के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक निरंतरता को भी विश्वस्तर पर पहचान मिल रही है। माजुली में निर्मित मुखौटा-कला, ब्रिटिश संग्रहालय में दर्शकों के लिए आकर्षण का केंद्र हैं। प्रतिवर्ष विदेशों से इस कला का प्रशिक्षण लेने हेतु पर्यटकों भी आते हैं। माजुली में निर्मित मुखौटे भाओना (नाटक) के अतिरिक्त असम के विभिन्न लोकानुष्ठानों एवं त्योहारों पर भी पहने जाते हैं। जैसे-भारीगानर मुखौटा, तिया जनजाति की परंपरागत पूजा-पाठ में व्यवहार किया मुखौटा, धुबुरी गोवालपारा अंचल में प्रचलित कालीचंदी पूजा और नृत्य में व्यवहार किया मुखौटा आदि।

वर्तमान समय में मुखौटा कला के प्रशिक्षण के साथ-साथ इसका संरक्षण भी हुआ है। इस महान कार्य में असम के चित्रकला महाविद्यालय, कलाक्षेत्र, रबीन्द्र भवन आदि ने भी अपना योगदान दिया है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। संरक्षण जैसे कठिन कार्य को सफल बनाने के लिए सरकार का संपूर्ण सहयोग आवश्यक है।

निष्कर्षः मुखौटा एक अभिनव शिल्प है जो एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को छिपाकर उसे भिन्न रुप में उपस्थापित कर देता है। असम में श्रीमंत शंकरदेव ने मुखौटा को एक विशेष मर्यादा प्रदान कर उसे एक विशिष्ट कला के रुप में प्रतिस्थापित किया। 'चिहनयात्रा' नाटक के जरिये गुरुदेव ने पहली बार कला के क्षेत्र में मुखौटे का प्रयोग किया था। समय की मांग को ध्यान में रखकर किये गए इस प्रयास से सत्र संस्कृति, सत्रों के आध्यात्मिक पहलू तथा मुखौटा कला को आज विश्व दरबार में स्वीकृति मिली है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. ठाकुर, रामचरण : 'गुरु चरित', प्रकाशक दत्तबरुवा, संस्करणः को. 2007, पृ. 302

2. शर्मा, डॉ बसंत कुमार (प्रबंध): 'अकिया भाओनार जनप्रियता', असमर लोक-नाट्य आरु अंकिया भाओना', (संपा) सैकिया डॉ. अजित, बर ठाकुर डॉ. सत्यकाम, असम साहित्य सभा, 2010, पृ. 85

3. ठाकुर, रामचरण : 'गुरु चरित', प्रकाशक दत्तबरुवा, संस्करण, 2007, पृ. 304

4. नाथ, डॉ. डम्बरुधर (प्रबंध) : 'Majuli Island : An Intro duction', 'माजुली', पृ. 10

5. शर्मा, तीर्थनाथ : 'आउनीआटी सत्र बुरंजी', 2004, पृ. 83

सहायक ग्रंथ

1. नाथ जीवकांत, चौहान रामजीतन (संपा) : 'भक्ति आंदोलन और राष्ट्रीय एकता', मरिगांव महाविद्यालय, मरिगांव, संस्करण, 2010

2. प्रो. चंदन कुमार (संपा): 'प्राग्ज्योतिका', अंक 2, जनवरी- मार्च, 2021

3. सैकिया डॉ. अजित, बर ठाकुर डॉ. सत्यकाम (संपा): 'असमर लोक-नाट्य आरु अंकिया भाओना', प्रकाशक असम साहित्य सभा, संस्करण, 2010

4. सैकिया शैलेन (संपा): 'सूत्रधार', नगांव भाओना समारोह, 2021

5. बरुवा मृणाल कुमार, देउरजा मनोज कुमार (संपा): 'कृष्ण- कथामृत', श्रीमंत शंकरदेव संघ 88 संख्यक वार्षिक अधिवेशन, 2019

6. सैकिया डॉ. देवजित (संपा): 'रस-तरंगिणी', स्मारक - ग्रंथ, असम भाओना समारोह 2012, श्रीश्री आउनीआटी सत्र, माजुली।

पुरबी कलिता

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

असम विश्वविद्यालय, सिलचर, असम